हिंदी के साहित्यकार कब आत्मचिंतन करेंगे ?

मेरा हिंदी जगत से जुड़े सभी साहित्यकारों से सीधा प्रश्न है कि वे बतायें कि उनकी रची कृतियों का प्रकाशन कितनी संख्या में होता है ?
कम से कम पांच सौ, तीन सौ। ऐसे भी कितने हैं जिनकी कृतियों का प्रकाशन एक लाख, पांच लाख अथवा दस लाख संख्या में होता है। क्या इस विषय में कोई सर्वेक्षण हुआ है भी ? आज इस समूह पर जानकारी सामने आई है कि दुनिया में हिंदी बोलने वाले नब्बे करोड़ हैं। लिखने-पढ़ने वाले क्या तीस-चालिस करोड़ होंगे ? अथवा दस/ पंद्रह करोड़ ? क्या हिंदी में प्रकाशित साहित्य को पढ़ने वाले एक करोड़ होंगे या दस-बीस लाख ?

यह भी अज्ञात लगता है कि कितने ऐसे हिंदी में लिखने वाले साहित्यकार है, जिनकी आजीविका साहित्य प्रकाशन से चलती है ? ऊपर प्रस्तुत जिज्ञासा का प्रमाणिक समाधान कैसे, कहाँ से मिल सकता है ? हिंदी के पाठकों की कमी के पीछे क्या यह सच्चाई है कि इस भाषा में पाठकों को पसंद आने लायक़ लेखन न के बराबर होता है। हिंदी के लेखक हिंदी जगत के पाठकों की रुचि से क्या अवगत नहीं है ? अथवा दमदार लेखन कितने करते है, जिनकी ओर पाठक स्वत : आकर्षित होकर साहित्य ख़रीदें। पाँच-दस संस्करण कितनी और कितने रचनाकारों के प्रकाशित हो रहे हैं। हो सके तो इस संबंध में विगत सामने आना चाहिए।

मलयालम, तमिल, बांग्ला या मराठी भाषा वालों की आबादी, हिंदी भाषा वालों से कम से कम दस गुना कम होगी। किंतु इन भाषाओं में प्रकाशित अनेक रचनाकारों की कृतियां हिंदी भाषा में प्रकाशित साहित्यकारों की रचनाओं से कई गुना अधिक होती है। अब हिंदी के साहित्यकारों को आत्म चिंतन करना चाहिए कि नहीं जिस भाषा में वे लेखनी चलाते हैं, उनकी उस भाषा की स्थिति उनके अपने हिंदी भाषी राज्यों के हर क्षेत्र में निरंतर कमजोर क्यों होती जा रही है ?

जब भाषा की दशा सोचनीय हो रही हो, तो लेखन में ताजगी कहाँ से आयेगी ? हिंदी का पक्ष कमजोर होने का बड़ा कारण क्या यह नहीं है कि इस भाषा की युवा पीढ़ी की शैक्षणिक परिस्थिति अब हिंदी में पढ़ने और लिखने का वातावरण ही नहीं प्रदान कर रही है ? युवा पीढ़ी की रुचि हिंदी के प्रति खत्म होती जा रही है ! हिंदी के साहित्यकार फिर भी आत्ममुग्धता के स्वप्नलोक में खुश हैं ? वे खुश हैं कि उनकी रचनाओं का विमोचन, समीक्षा और प्रचार-प्रसार हो, तो रहा है ! इससे अधिक उनको कोई उम्मीद भी नहीं है ? भले ही उनकी रचनाओं के ख़रीददार नहीं के बराबर हैं। भले ही पुस्तकालयों में उनकी कृतियाँ धुल खा रही हो। जिस भाषा का जीवन के व्यवहार में मान-सम्मान निरंतर घट रहा हो, उस भाषा की कृतियों को ख़रीदने वालों की दशा निश्चित ही रचनाकार से अधिक कोई नहीं जान सकता है ! हिंदी जीवंत भाषा हो, इस ओर कब और कौन ध्यान देगा ?

निर्मलकुमार पाटोदी, इंदौर
साभार
वैश्विक हिंदी सम्मेलन, मुंबई

vaishwikhindisammelan@gmail.com
वैश्विक हिंदी सम्मेलन की वैबसाइट –www.vhindi.in
'वैश्विक हिंदी सम्मेलन' फेसबुक समूह का पता-https://www.facebook.com/groups/mumbaihindisammelan/
संपर्क – vaishwikhindisammelan@gmail.com